**भारत और लिंग चयन का भ्रम**

फराह नकवी व् ए के शिवा कुमार

24 जनवरी, 2012

**हमें केवल विज्ञापनों में ‘कन्या संतान से प्रेम करो’ का आहवान करने से आगे बढ़ना होगा**

भारत में शिशुओं के लैंगिक अनुपात में और अधिक कमी की रिपोर्ट आने पर हमारी पहली प्रतिक्रिया क्या थी? 2011 की जनसँख्या के आरंभिक परिणाम (मार्च-अप्रैल 2011) मिलने के कुछ दिनों के भीतर ही स्वास्थय एवं परिवार कल्याण मंत्रालय नें गर्भाधान पूर्व व् प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग निर्धारण निषेध) कानून 1994 (PNDT Act) पर केंद्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड का पुनर्गठन कर दिया जिसकी पिछले तीन वर्षों में कोई बैठक तक नहीं हुई थी। इसके बाद 30 नवम्बर 2011 को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय नें शिशु लिंग अनुपात पर एक सेक्टोरल इन्नोवेशन कौंसिल की भी स्थापना कर दी। लेकिन हमेशा की तरह हम आग लगने के बाद आग लगने के कारणों को जानने की बजाय आग की लपटों को बुझाने में अधिक व्यस्त हो जाते हैं। आग लग जाने पर उसे बुझाने की कोशिश करने की यह कार्यनीति सफल रहने की उम्मीद नहीं होती क्योंकि किसी एक जिले में आग पर काबू पाते ही यह दुसरे जिले में तेज़ी से फैलने लगती है, और हमारे यहाँ भी कदाचित यही हुआ है।

वर्ष 1991 से 2011 के बीच 6 वर्ष तक की आयु के शिशुओं के लैंगिक अनुपात में तेजी से गिरावट आई थी। वर्ष 1991 में शिशु लैंगिक अनुपात प्रति 1000 लड़कों में 945 लड़कियों का था जो 2001 में घटकर 927 हो गया था और 2011 में यह और अधिक घटकर 914 लडकियां प्रति 1000 लड़के हो गया – स्वतंत्रता के बाद से यह सबसे निम्नतर स्तर था – यह न केवल गंभीर चिंता का विषय था बल्कि अपनी यह समय था जब नीतियों पर पुनर्विचार करने की जरूरत महसूस होने लगी। पिछले 2 दशकों में लिंग अनुपात में यह गिरावट कुछ रुक सी गयी लगती है लेकिन शुरुआत में जो रुझान केवल शहरी क्षेत्रों में देखे जा रहे थे वे अब ग्रामीण इलाकों में भी देखे जाने लगे हैं। और यह गिरावट कानूनी प्रावधानों, नकद प्रोत्साहन और मीडिया में लगातार घोषणाओं के बावजूद देखी गयी है। पूरे देश में वर्ग और जाति के सभी भेदों को पीछे कर, ऐसा लगता है की भारत में लोग यह कोशिश करने में जुटे प्रतीत होते हैं कि लड़कियां पैदा ही न हों। हमारी जनसँख्या में इस मानव रचित बदलावों के प्रभाव न केवल जेंडर आधारित न्याय और समानता पर होंगे बल्कि इनका सीधा असर सामाजिक हिंसा, मानवीय विकास और लोकतंत्र पर भी पड़ेगा।

**गलती कहाँ हो रही है?**

हमारे बनाये हुए कार्यक्रमों और उन्हें लागू करने के लिए तैयार नीतियों में क्या कमी रह गयी है, ऐसा क्या है जो हम ठीक से नहीं कर रहे हैं? सबसे पहले तो हमसे यह गलती हो रही है कि हम बेटों के जन्म की इच्छा रखने, लड़कियों की पैदाइश न चाहने और समाज में महिलाओं को कमतर करके समझने जैसी एक बहुत ही पुरानी गहरी बैठ चुकी बीमारी को खत्म करने के लिए एक राष्ट्रीय नीति तैयार करने की बजाये सिर्फ लिंग निर्धारण जैसे उसके एक लक्षण को समाप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। लिंग निर्धारण को समाप्त करने के लिए सरकारी नीति के तहत यह कोशिश की जाती रही है कि कानून बना कर लिंग निर्धारण कर पाने की तकनीक और मशीनों के आसानी से उपलब्ध होने पर रोक लगायी जाए – PCPNDT कानून के अंतर्गत गर्भस्थ भ्रूण के लिंग निर्धारण के लिए नैदानिक तकनीकों के प्रयोग की मनाही है। मांग और आपूर्ति के सिद्धान्त पर आधारित इस कानून को लागू करने का तर्क यह रहा है कि लिंग जांच करने के लिए मशीनों और तकनीक के उपलब्ध न रहने से इस जांच की मांग अपने-आप ही कम हो जाएगी, लोग गर्भस्थ शिशु के लिंग की जांच नहीं करवा पायेंगे और गर्भ में लड़की होने पर गर्भसमापन भी नहीं करवा पायेंगे। लेकिन PCPNDT कानून का बड़े पैमाने पर प्रचार करने, हर अस्पताल, नर्सिंग होम और क्लिनिक में इस कानून के बारे में साइनबोर्ड लगवाने के बाद भी इस कानून को लागू करने का अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आये हैं ।

इसके अलावा लिंग जांच के विरुद्ध कानून बना देने का परिणाम यह भी हुआ है कि लिंग जांच के अलावा (कानून में केवल गर्भस्थ शिशु के लिंग की जांच के लिए मेडिकल निदान तकनीक के प्रयोग की मनाही है) अब गर्भसमापन करवा पाने के विरोध में भी चर्चा शुरू हो गयी है । पिछले कुछ वर्षों से मीडिया में भी गर्भसमापन के बाद कन्या भ्रूणों को ढूँढने की होड़ सी लग गयी है, अब मीडिया में छपने वाली रिपोर्टों में अक्सर “भ्रूण हत्या या भ्रूण अवशेष” जैसे शब्द सुनने और पढने को मिलते हैं। ऐसी ख़बरों के (जैसे किसी क्लिनिक के बाहर बोरी में या किसी खेत में या गहरे कुँए में भ्रूण अवशेष पाए गए) छपने से मीडिया को आवश्यक सनसनी की खुराक मिल जाती है।

यह सही है कि इस विषय पर पुरे देश का ध्यान आकृष्ट होना एक अच्छी बात है लेकिन यह अपने आप में एक गंभीर और जटिल विषय भी है। इसमें एक ओर लड़कियों के जन्म ले पाने के अधिकार की और समाज में लिंग अनुपात बनाये रखने की बात है तो दूसरी ओर इसमें प्रजनन अधिकारों के अंतर्गत महिलाओं द्वारा गर्भसमापन कानून (1971 में लागू और 1975 में संशोधित) के तहत कानूनी तौर पर सुरक्षित गर्भसमापन करवाने की बात भी शामिल है। एक विशेष तरह के गर्भसमापन (गर्भ में कन्या भ्रूण को समाप्त करने) को रोकने की हमारी कोशिश का परिणाम यह हुआ है कि किसी भी परिस्थिति में गर्भपात करवाना कलंकित समझा जाने लगा है। भारत में वैसे भी महिलाओं द्वारा सुरक्षित और कानूनी तौर पर गर्भसमापन करवा पाना बहुत आसान नहीं है और इस तरह से गर्भपात के विरुद्ध माहौल बनने से उनकी तकलीफें और भी बढ़ जाती हैं। भ्रूण हत्या शब्द अर्थात गर्भ में भ्रूण को समाप्त करने के प्रयोग से निश्चित ही गर्भसमापन अधिकारों पर विपरीत असर पड़ता है।

**लिंग जांच की मांग को कम करने की कोशिश**

जहाँ तक लिंग जांच करवाने के मामलों में कमी लाने और बेटों के जन्म को पसंद करने और बेटी का जन्म न होने देने जैसे जटिल विषयों हो हल करने का सवाल है – उसके लिए हमारी नीतियों में हमने हर वर्ष 24 जनवरी को ‘राष्ट्रीय कन्या दिवस’ मनाने (2009 से आरम्भ), सड़कों पर ‘बेटी बचाओ’, ‘बेटी से प्यार करो’, ‘बेटियों की हत्या रोको’ के बोर्ड लगाने जैसी कोशिशें की और लड़कियों के पैदाइश को बढाने के लिए बेटी के जन्म पर नकद प्रोत्साहन देने जैसे और भी प्रयास किये हैं । राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर की जा रही यह सभी कोशिशें बहुत अधिक सफल नहीं रही हैं।

वर्ष 2010 में UNFPA के लिए IIPS के टी वी शेखर द्वारा लड़की के जन्म पर नकद प्रोत्साहन दिए जाने की ‘धन लक्ष्मी’, लाडली’, ‘बेटी है अनमोल’, ‘कन्यादान’ और ऐसी ही अन्य योजनायों की समीक्षा की गयी थी और इस समीक्षा के परिणाम बहुत चौंका देने वाले हैं। इन अधिकाँश योजनायों में योजना की समाप्ति पर एकमुश्त राशि दी जाती थी, इन योजनायों की शर्तें बहुत जटिल थीं (जैसे टीकाकरण होना चाहिए, स्कूल में दाखिला किया जाए, अस्पताल में प्रसव हो, नसबंदी की जाए आदि) और इनमे लड़की के 18 वर्ष की हो जाने पर राशी का भुगतान किया जाता था (क्या यह राशि दहेज़ खर्च के लिए थी?) और ज़्यादातर इन्हें गरीबी रेखा से नीचे रह रहे अथवा निर्धन लोगों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया था। कुछ पैसे के भुगतान से लोगों को टीकाकरण कराने, शिक्षा देने और नसबंदी कुछ स्वीकार्य व्यवहारों को अपनाने के लिए मजबूर करने की आपत्तिजनक कोशिश होने के साथ इनमे बड़ी समस्या यह थी कि ये सभी योजनायें ज्यादातर गरीब लोगों को ध्यान में रख कर बनायीं गयी थीं। लिंग जांच करवाने और कन्या भ्रूण समापन की समस्या केवल गरीब या गरीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों तक ही सिमित नहीं है। वे परिवार जो लिंग जांच करवाने पर खर्च करने में सक्षम हैं उनके लिए नकद प्रोत्साहन की छोटी सी राशि बहुत अधिक महत्व नहीं रखती। इस विषय में भारत के नीति-निर्माताओं, जो अभी तक केवल गरीबों के लिए कार्यक्रम बनाने के आदि हो चुके हैं, को कोशिश करनी होगी कि वे कोई ऐसी नीति तैयार करें जिसके तहत मध्यम, धनी और धनाड्य वर्ग को भी शामिल किया जा सके।

इस बारे में सरकार और गैर-सरकारी संगठन, दोनों नें अपने पैरवी और संवाद के प्रयासों में ‘कन्या शिशु को प्यार करें’ जैसे संदेशों का सहारा लिया है। उनके ये सन्देश और इनकी भाषा राजनीतिक रूप से स्वीकार्य है, अपवादों से परे है और एक प्रकार से पितृसत्ता का सुरक्षा कवच पहने प्रतीत होती है को लड़की को बचाने पर जोर देती है। ‘छोटी-छोटी चोटी’ वाली प्यारी सी लड़कियों को सब चाहते हैं, हमारे संसद सदस्य भी, भले ही वे बार-बार संसद में महिला आरक्षण बिल के पास होने का विरोध करते रहे!

**सांस्कृतिक दृष्टिकोण**

जैसा कि हमारी नीतियों या संदेशों से प्रतीत होता है, इस विषय में ‘मांग’ की समस्या कहीं अधिक गहरी है। गर्भस्थ शिशु के लिंग का निर्धारण करने के पीछे बहुत से सांस्कृतिक व्यवहार, पितृसत्ता का भेदभाव, सामाजिक-आर्थिक दबाब, आधुनिकता के कारण आने वाले बदलाव और मेडिकल तकनीकों के दरुपयोग जैसे कारण शामिल हैं। आधुनिक जीवन शैली और उपभोक्तावाद की विचारधारा के कारण समाज में महिलाओं के स्तर में गिरावट और लड़कियों का जन्म को पसंद न किया जाना, बुढापे में सामजिक सुरक्षा न मिलने के कारण बेटे के जन्म को बढ़ावा देना, महिलाओं के खिलाफ हिंसा की बढती घटनाएं, संपत्ति के अधिकार, उत्तराधिकार के नियम – ये सब लिंग जांच और निर्धारण में बड़ी भूमिका निभाते हैं। हमें लिंग अनुपात के बारे में एक ऐसी समग्र राष्ट्रीय नीति बनाये जाने की मांग करनी होगी तो इस समस्या को बढाने वाले प्रत्येक कारण का निवारण करने में सक्षम हो।

**दक्षिण कोरिया और चीन**

दक्षिण कोरिया एक समग्र राष्ट्रीय नीति अपनाकर इस समस्या से निजात पाने में सफल रहा है। भले ही हम चीन की राष्ट्रीय नीति से सहमत न हों पर उन्होंने ऐसी एक नीति बनायीं और अपनाई है। चीन की सरकार नें लिंग जांच के लिए नैदानिक तकनीक के प्रयोग को रोकने के साथ-साथ जेंडर समानता सुनिश्चित करने, महिला कामगारों की संख्या और सहभागिता बढाने, वृधावस्था में सुरक्षा मुहैया कराने के लिए अनेक नयी नीतियाँ अपनाई हैं और नए कानून लागू किये हैं। उस देश में लिंग-अनुपात में कुछ सकारात्मक बदलाव दिखाई देने लगे हैं।

अंत में, राष्ट्रीय स्तर के किसी भी नीतिगत प्रयास को सफल रूप से लागू करने में एक राष्ट्रीय संवाद नीति बहुत ज़रूरी होती है और इसमें दो चीज़ों को स्वीकार किया जाना बहुत आवश्यक है – पहला यह कि व्यवहार परिवर्तन की कोशिश के लिए संवाद करना एक विशेष सामर्थ्य का काम है और इसका खुल कर प्रयोग होना चाहिए, दुसरे यह कि भारत में परिवारों के स्वरुप में बदलाव के साथ-साथ यहाँ लोगों के प्रजनन सम्बन्धी फैसले लेने में भी बदलाव आ रहा है । संवाद या सन्देश देने की कार्ययोजना में सबसे पहले उन लोगों की पहचान की जानी चाहिए जो परिवार में इस तरह के फैसले लेते हैं और फिर इसके बाद उन सभी लोगों की भी पहचान की जानी चाहिए जो इन फैसलों में परिवार का समर्थन करते हैं। इन दोनों पक्षों तक पहुँच बनाने के लिए मीडिया के सभी प्रमुख तरीकों, पारंपरिक और नए, का प्रयोग किया जाना चाहिए। इन संदेशों की भाषा और दिए जा रहे सन्देश के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन अभी के लिए क्यों न हम सब इसके लिए तैयार हों कि हमें केवल विज्ञापनों में ‘कन्या संतान से प्रेम करो’ का आहवान से आगे बढ़ना होगा और यह भी कि, आने वाले दिनों में यही लड़की बड़ी होकर महिला बनेगी।

(फराह नकवी एक स्वतंत्र लेखिका और एक्टिविस्ट हैं। ए के शिवा कुमार एक विकास अर्थशास्त्री हैं। दोनों लेखकगण राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् के सदस्य हैं। इस लेख में व्यक्त किये गए विचार उनके अपने हैं । farah310@gmail.com)



पूरे देश भारतीय लोगों की यही कोशिश रही है कि किसी भी तरह से लडकियां पैदा ही न हों। हमारी जनसँख्या में इस मानव रचित बदलावों के प्रभाव न केवल जेंडर आधारित न्याय और समानता पर होंगे बल्कि इनका सीधा असर मानवीय विकास और लोकतंत्र पर भी पड़ेगा। इस चित्र में आंध्र प्रदेश के मेडक में शिशु विहार अनाथालय में दो लड़कियों को दिखाया गया है। चित्र : मो. आरिफ